International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 3, March - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

'भारतीयता की अवधारणा और इतिहास दृष्टि'

अरुणिमा
शोधार्थी (पीएच.-डी., इतिहास)
बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर, बिहार

भारत की भौगोलिक सीमा के अंदर विभिन्न भाषा-भाषी और विभिन्न जाति, धर्म एवं संप्रदाय के लोग निवास करते हैं। उनकी अपनी–अपनी क्षेत्रीय और भाषाई संस्कृति है। प्रत्येक धर्म एवं संप्रदाय के लोग सांस्कृतिक स्तर पर एक–दूसरे से भिन्न हैं। बावजूद इसके राष्ट्रीयता के स्तर पर सभी एक हैं। इस देश में रहने वाली जनता भारतीय पहचान जैसे राष्ट्रगान, राष्ट्रीय ध्वज और अन्य राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान करती है। साथ ही एक ही संविधान के नियमों के तहत संचालित होती है। राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति यह सम्मान एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहचान कायम करता है जिसे भारतीयता भी कह सकते हैं। एक राष्ट्र के रूप में हम सब भारतीय हैं। इस राष्ट्रीयता को जगाने के लिए भारतीय विचारकों ने अंग्रेजों के खिलाफ अपने खोए हुए गौरवशाली प्राचीन अतीत की महिमागान के द्वारा संपूर्ण भारतवर्ष को एकजुट किया था। एक राष्ट्र एवं एक राष्ट्रीय पहचान के संदर्भ में यह माना जाता है कि राष्ट्रों का निर्माण ऐसे समूह द्वारा होता है जो कुल या भाषा अथवा धर्म या फिर जातीयता जैसे कुछ निश्चित पहचान के साथ जुड़े होते हैं। लेकिन यह जरुरी नहीं है कि दुनिया के सभी राष्ट्रों के सामने ये गुण समान रूप से मौजूद हों। कई राष्ट्रों की अपनी कोई एक सामान्य भाषा नहीं है। उदाहरण के तौर पर देखें तो कनाडा में अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषा-भाषी लोग एक साथ रहते हैं। ठीक यही बात भारत पर भी लागू होती है। यहाँ भी अनेक भाषाएँ हैं जो अलग-अलग राज्यों और प्रांतों में रह रहे भिन्न–भिन्न समुदायों द्वारा बोली जाती हैं। साथ ही यहाँ धर्म की दृष्टि से भी एक जुटता नहीं है। जलवायु, रहन-सहन और खान-पान तक में भिन्नता है इसके बावजूद भारत सांस्कृतिक रूप से एक है।

भारतीयता के संदर्भ में यह बात कही जाती है कि यह अंग्रेजों की देन है। भारत के ब्रिटिश उपनिवेश बनने और अंग्रेजी भाषा के आगमन के पश्चात ही यहाँ राष्ट्रवादी भावनाओं का जन्म हुआ। इस राष्ट्रवादी भावना के जन्म के बाद भारतीयता की मूल चेतना का वकास होना प्रारम्भ हुआ। इससे पहले इस देश में राष्ट्रीय चेतना का सर्वथा अभाव था। इस संदर्भ में ए आर देसाई ने लिखा है कि, "अनेक ब्रिटिश राजनेताओं ने दावा किया है कि भारतीय राष्ट्रवाद भारत में अंग्रेजों द्वारा लाई गई आधुनिक शिक्षा का परिणाम है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि आधुनिक शिक्षा ने भारतीयों को पाश्चात्य लेखकों द्वारा प्रतिपादित स्वतंत्रता संबंधी सिद्धांतों से परिचित कराया और इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य की इच्छा पैदा हुई। शिक्षा की प्रगतिशील भूमिका को मानते हुए भी यह समझ लेना गलत होगा कि भारतीय राष्ट्रवाद इस शिक्षा की संतति है।"[1] यहाँ ए आर देसाई ने उस मानसिकता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया

Vol. 9, Issue 3, March - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

है जिसमें भारतीय राष्ट्रवाद को अंग्रेजों और अंग्रेजी शिक्षा की देन बताया जाता है। लेकिन देसाई जी ने उस मानसिकता को नकार दिया है। वे भारतीय राष्ट्रवाद की भावना को अंग्रेजों की देन मानने के खिलाफ हैं। यदि भारत के इतिहासकारों और उनके द्वारा लिखे गए इतिहास ग्रंथों की ओर नजर डाली जाए तो हम पाएंगे कि भारत के लगभग सभी इतिहासकार उसी ब्रिटिश मानसिकता से ग्रसित होकर भारतीय इतिहास का लेखन करते हैं जो यह मानती है कि राष्ट्रवाद अंग्रेजों की देन है।

भारतीय सांस्कृतिक पहचान की यदि बात की जाए तो इसमें हमारे प्राचीन साहित्य ने काफी उन्नति की थी। उसकी उन्नत अवस्था का पता इसी बात से चलता है कि संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांधने के लिए उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम हर दिशा में तीर्थ स्थलों की स्थापना की गई। आज की जो राजनीतिक चेतना है तब उसका अभाव भले ही था लेकिन सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से संपूर्ण भारत वर्ष में एकरूपता थी। भले ही तीर्थ करने की दृष्टि से ही लोग अपने प्रांत से बाहर जाते थे लेकिन अपनापन और एकरूपता तो महसूस करते ही थे। आज की राजनीतिक परिस्थितियों के हिसाब से उसका मूल्यांकन करेंगे तो उसने खामियां जरूर नजर आएंगी किंतु हम उसे एक सिरे से ही ख़ारिज नहीं सकते। ऐसा इसलिए भी कि तत्कालीन भारतीय परिवेश में लोग धार्मिक रूप से एकजुटता महसूस करते थे। वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य उस समय मौजूद ही नहीं था। अतः भारतीय एकता के सूत्र उसी रूप में तलाशने होंगे जिस रूप में वह लोगों के बीच मौजूद थे। इस संदर्भ में राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है कि, "तीर्थ यात्रा की संस्था प्राचीन हिंदू सभ्यता और संस्कृति की अपनी विशेषताओं में से है। संसार के और किसी देश में देवालय और तीर्थ स्थानों का ऐसा जाल बिछा हुआ दिखाई नहीं देता जैसा हमारी इस विस्तृत मातृभूमि पर, लोगों के धार्मिक उत्साह के परिणाम स्वरूप फैला हुआ है- लोगों ने इस तरह अपने देश के प्रति श्रद्धा प्रकाशित करने का यत्न किया है। सच्चाई तो यह है कि यदि हम इस विशेष संस्था के उद्गम की सावधानी से परीक्षा करें जिसने देश के सब भागों को इसके इतिहास के सब कालों में इतना प्रभावित किया है तो हमें इस निष्कर्ष पर आना पड़ेगा कि यह उन नीतियों में से एक है जिनसे हिंदू ने अपना देशप्रेम अभिव्यक्त किया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तीर्थ यात्रा की संस्था अंततोगत्वा मातृभूमि के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति है यह देश की पूजा की लाक्षणिक हिंदू रीतियों में से एक है। पितृ भूमि के प्रति प्रेम ने अपने उत्साह की तीव्रता में सारे देश में हजारों तीर्थ स्थानों को जन्म दिया है जिससे उसका प्रत्येक भाग पवित्र और पूजा योग्य माना जाए।"[2] इसके साथ ही हमें यह भी समझने की आवश्यकता है कि इसका संदर्भ केवल धार्मिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है बल्कि भौगोलिक और स्थापत्य कला की दृष्टि से भी उतना ही उपयोगी है जैसा कि राधा कुमुद मुकर्जी ने बताया है कि, "यह भी ध्यान देने की बात है कि इस संस्था के साथ जो शुद्ध रूप से धार्मिक पुण्य और आध्यात्मिक लाभ जुड़े हुए हैं उनके पीछे स्थान प्रेम भौगोलिक महत्व की दृष्टि और कला की सराहना ये आधारभूत कारक हैं। उत्तर में बनारस और दक्षिण में कांची की पूजा और यात्रा सिर्फ इसलिए नहीं की जाती कि वे धार्मिक व्यक्तियों और कार्यों से साधु और विद्वानों के समागम से पवित्र हैं बल्कि इसलिए भी की जाती है कि वे स्वयं सुंदर स्थान हैं जो चिरस्थाई आनंद देने वाले हैं क्योंकि वह मंदिरों के नगर हैं और वास्तुकला और अन्य कलाओं से संपन्न हैं।"[3] यहाँ हम देख सकते हैं कि मुकर्जी ने प्राचीन भारतीय परिस्थितियों के चित्रण में हिंदू संस्कृति, हिंदू धर्म का ही उल्लेख किया है। इसका कारण यह है कि प्राचीन भारत में केवल सनातन धर्म ही था जिसे वैदिक धर्म या वैदिक

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 3, March - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

संस्कृति कहते हैं। यही कारण है कि यहाँ हिंदू धर्म और संस्कृति की बात की गई है। यह अलग बात है कि आगे चलकर इस देश में बाहरी अथवा विदेशी आक्रमणकारी आते रहे और यहाँ की संस्कृति में रच बस गए जिसे अब अलग करना कठिन है। विदेशियों के आने के बाद वैदिक धर्म में भी कुछ अंतर्विरोध दिखाई देने लगे थे और कई धाराएं निकल कर सामने आने लगी थीं। इसमें व्यापक प्रभाव तब पड़ा जब मुस्लिम आक्रमणकारी आए। यहीं से विभिन्न जातियों में बंटी सनातन संस्कृति और इस्लामी संस्कृति के बीच श्रेष्ठता को लेकर संघर्ष प्रारंभ होता है। इसी संघर्ष का फायदा उठाकर विभाजनकारी शक्तियां जिसमें इतिहासकार भी शामिल हैं वे भारतीय प्राचीन वैदिक साहित्य और संस्कृति को नीचा दिखाने का काम शुरू कर देते हैं। वे इतना ही नहीं करते बल्कि आर्यों एवं अनार्यों के बीच नफरत भी फैलाना शुरू कर देते हैं जबकि भारतीय संस्कृति इन्हीं आर्यों और अनार्यों के मेल से बनी थी। ऐसे षड़यंत्रकारी इतिहासकार विदेशी इतिहासकारों के प्रभाव में आकर आर्यों को विदेशी बताने का षड़यंत्र रचते हैं और अनार्यों को यहाँ का मूल निवासी बताते हैं। देखा जाए तो आर्य-अनार्य अथवा अन्य आर्येत्तर लोगों में कहीं कोई विरोध ही नहीं था बल्कि वे सभी आपस में ही एकमेक हो गए थे। इसके बावजूद ये षड़यंत्रकारी इतिहासकार अपनी योजना में सफल हो जाते हैं और आर्य-अनार्य का टंटा खड़ा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। हालाँकि इनके इस षड़यंत्र का जबरदस्त तरीके से तथ्यों के आलोक में खंडन भी किया गया है। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि, "भारत में संस्कृति के सबसे प्रबल उपकरण आर्यों और आर्यों से पहले के भारतवासियों, खास कर द्रविड़ों के मिलन से उत्पन्न हुए। इस मिलन, मिश्रण या समन्वय से एक बहुत बड़ी संस्कृति उत्पन्न हुई जिसका प्रतिनिधित्व हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत करती है। संस्कृत और प्राचीन पहलवी ये दोनों भाषाएँ एक ही माँ से मध्य एशिया में जन्मी थीं, किन्तु भारत में आकर संस्कृत ही यहाँ की राष्ट्रभाषा हो गई। यहाँ संस्कृत के विकास में उत्तर और दक्षिण दोनों ने योगदान दिया। सच तो यह है कि आगे चलकर संस्कृत के उत्थान में दक्षिण वालों का अंशदान अत्यंत प्रमुख रहा। संस्कृत हमारी जनता के विचार और धर्म का ही प्रतीक नहीं बनी, वरन भारत की सांस्कृतिक एकता भी उसी भाषा में साकार हुई।"[4] यहाँ आर्य और द्रविड़ के मेल मिलाप के फलस्वरूप बनी भारतीय संस्कृति का स्वरूप समझ सकते हैं। साथ ही यह भी देख सकते हैं कि इनके मध्य कोई संघर्ष या घृणा का भाव नहीं था। ये सब एकमेक होकर ही भारतीय संस्कृति का निर्माण करते हैं जिसका प्रतिनिधित्व संस्कृत भाषा करती है और पूरे भारत में एकता का सूत्र स्थापित करती है।

राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है कि, "संस्कृत साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन से ऐसे अनेक संदर्भ सामने आएंगे जो देश प्रेम की तीव्र अनुभूति की व्यापक चेतना प्रकट करते हैं। सच्चाई तो यह है कि पितृभूमि के लिए प्रगाढ़ अनुराग सारे संस्कृत साहित्य में व्याप्त है। राष्ट्र निर्माण का सबसे पहला उपादान है जन्मभूमि के लिए गहरा अनुराग और यदि इसकी वृद्धि में संस्कृत साहित्य का हाथ दिखाई देता है।"[5] संस्कृत भाषा और साहित्य की इस ताकत की ओर रामविलास शर्मा ने भी इशारा किया है। संस्कृत की ताकत को वे जानते थे। पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण संपूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बांधने वाली संस्कृत भाषा के साहित्यकारों का उल्लेख करते हुए उस एकता के सूत्र को स्पष्ट भी किया है। उन्होंने लिखा है कि, "कालिदास प्रकृति के श्रेष्ठ कवि हैं वह मानव सौंदर्य और प्रेम की उपासना नगर से दूर वनों, उपवनों, पर्वतों और शास्त्रों की सीमाओं के बाहर

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 3, March - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

करते हैं। भवभूति शेक्सपियर से अनेक शताब्दियों पहले मानव मन के विघटन का चित्रण करते हैं। और यूनानी लोग जिस तरह के नाटकों को ट्रेजडी कहते थे उनकी रचना में वह शेक्सपियर और सोफ़ोक्लेस दोनों के प्रतिद्वंदी हैं। उनका संबंध उत्तर भारत के प्रसिद्ध सांस्कृतिक केंद्र कान्यकुब्ज से था। संस्कृत के अनेक केंद्र दक्षिण भारत में थे और महान वैयाकरणाचार्य पाणिनि तक्षशिला के थे। संस्कृत के माध्यम से इस तरह सारा देश एक ही सांस्कृतिक सूत्र में बंध गया था।"[6]

आर्य-अनार्य विवाद के बीच जहाँ तक मूल और विदेशी होने की बात की जाती है उसका खंडन यहाँ उसी संस्कृत भाषा में लिखे गए वेद-पुराण को आधार बनाकर किया गया है जिस भाषा ने संपूर्ण भारतवर्ष को भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से जोड़ने का काम किया था। संस्कृत भाषा के इस योगदान को बहुत से इतिहासकारों ने षड़यंत्र के तहत नकार दिया है। रामधारी सिंह दिनकर ने षड़यंत्रकारी इतिहासकारों की इस मानसिकता का खंडन करते हुए लिखा है कि, "ऋग्वेद में कहीं कण भर भी ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया अथवा इसे जीता था किंतु संस्कृत और तमिल के प्राचीन साहित्य से यह बात अवश्य लक्षित होती है कि संस्कृत भाषी आर्य भारत में विंध्य के उत्तर तक ही सीमित थे, विंध्य के दक्षिण में लोग बसते थे जिन की भाषा संस्कृत नहीं थी।"[7] इस तरह हम देखते हैं कि आर्य विदेशी नहीं थे बल्कि भारत के ही निवासी थे। जिनमें ज्ञान का प्रसार हो चुका था। आर्य यहीं के थे। इसका एक और प्रमाण दिनकर जी ने ऋग्वेद को आधार बना कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि, "जैसे पंडितों में इस बात को लेकर मतभेद है कि आर्य मूलतः भारतवासी थे अथवा भारत में वे बाहर से आए थे, वैसे ही यह बात भी निश्चय पूर्वक नहीं कही जा सकती कि द्रविड़ इस देश के मूल निवासी हैं अथवा इस देश में वे किसी और देश से आए हैं। आर्य और द्रविड़ दोनों प्रकार के लोग इस देश में अनंत काल से रहते आए हैं और हमारे प्राचीनतम साहित्य में इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ये दोनों जातियाँ बाहर से आईं अथवा इन दोनों के बीच कभी लड़ाई भी हुई थीं। आर्यों का संघर्ष दास और असुर जाति के लोगों से हुआ था इसका थोड़ा बहुत प्रमाण है किंतु ये दास और असुर कौन थे इस विषय में हमारे पास सुनिश्चित प्रमाण नहीं हैं।"[8]

इस प्रकार भारतीय संस्कृति को हेय समझने वाली और आर्य-अनार्य के बीच अंतर करने वाली दृष्टि का पुरजोर खंडन किया गया है। "आर्य भारत में बाहर से नहीं आए यह मानने का मुख्य आधार यह है कि आर्यों का प्राचीनतम साहित्य वेद जो मानव मात्र का प्राचीनतम ग्रंथ है भारत में ही मिलता है। दूसरा कारण यह बताया जाता है कि आर्य भारत में अन्य देशों से आए तो वेद में उन स्थानों के नाम क्यों नहीं मिलते अथवा आर्य उन देशों की याद क्यों नहीं करते हैं जहाँ से चलकर वे भारत आए थे ? एक तीसरा कारण और है जो पहले से संबंधित है। पश्चिमी विद्वान यह कहते हैं कि आर्य पहले मध्य एशिया अथवा रूस के दक्षिण भाग में रहते थे और वहीं से फैल कर वे यूरोप और भारत गए। यदि यह बात ठीक है तो आर्यों ने वेद के समान कोई प्रामाणिक साहित्य अपने मूल स्थान में क्यों नहीं छोड़ा ? यह भी कि यदि आर्यों का मूल निवास भारत से बाहर था तो ऐसा क्यों है कि संस्कृत के शब्द भारत की सभी भाषाओं में बहुतायत से मिलते हैं, किंतु यूरोप की भाषाओं में उनकी संख्या अत्यंत न्यून है ?"[9]

दरअसल प्राचीन काल से ही इस देश में राष्ट्रीयता या देश प्रेम की भावना को जगाने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अपने-अपने गाँव या जनपद को ही देश मानने वाली जनता को संपूर्ण भारत से जोड़ने का काम चाहे वह तीर्थ स्थानों के द्वारा हुआ हो या संस्कृत भाषा के द्वारा, दोनों के मूल में धर्म ही केंद्रीय सत्ता रही है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि, "पहले एक गाँव दूसरे गाँव से और गाँव शहर से अलग थे। साहित्य संस्कृति पर नागरिक संस्कृति की गहरी छाप थी। सबको एकसूत्रता प्रदान करने वाला तत्त्व धर्म था।"[10] जहाँ तक हिंदू और मुस्लिम संस्कृति की बात है तो इस पर ए. आर. देसाई ने लिखा है कि, "हिंदू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियाँ धर्म प्रधान थीं, और शहरों में ही राजाओं अभिजात वर्गीय लोगों और संपन्न वणिक समुदाय के संरक्षण में फली-फूलीं। बनारस, पुरी, मदुरई, नासिक, मथुरा, सोमनाथ और पाटन जैसे धार्मिक उपासना के अनेकानेक केंद्रों के विशाल हिंदू मंदिरों को हिंदू सम्राटों अभिजात वर्ग और धनी व्यापारियों ने बनवाए। वसुपाल और तेजपाल नामक दो धनी जैन व्यापारियों ने देलवाड़ा में जो जैन मंदिर बनवाए वह अपने सौंदर्य एवं स्थापत्य गुण के लिए सुप्रसिद्ध है। अशोक के विख्यात शीला स्तंभ जो सारे भारत में बिखरे हैं और जिन पर बौद्ध धर्म के तात्विक नीति सिद्धांत अंकित हैं।"[11] कुलमिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों में धर्म केंद्रीय भूमिका निभा रहा था। अंग्रेजों के आने के बाद भी जब देश में स्वतंत्रता आंदोलन शुरू हुआ तब भी इसके मूल में धर्म सत्ता ही थी। 1857 का सिपाही विद्रोह जिसे प्रथम स्वाधीनता संघर्ष माना गया है वह विद्रोह भी अपने धर्म की रक्षा के लिए ही किया गया था। हिंदू गाय की चर्बी के कारण, मुसलमान सूअर की चर्बी के कारण एकजुट हुए थे। हिंदू और मुसलमान दोनों को यह समझ में आ गया था कि इस विदेशी शक्ति को भगाए बिना हमें धार्मिक स्वतंत्रता तो क्या किसी भी तरह की स्वतंत्रता नहीं मिलने वाली है। इस प्रकार सामूहिक संघर्ष शुरू हुआ था जिसमें मुख्य भूमिका धर्म की ही थी। सुषमा नारायण ने लिखा है कि, "राष्ट्रीयता की मूल प्रेरणा धर्म से मिली। धर्म का व्यक्तिगत पक्ष कुंठित था परंतु राष्ट्रीयता अथवा देश सुधार का पक्ष प्रबल था। इस काल की धार्मिक राष्ट्रीयता का प्रमुख ध्येय था भारत के अतीत गौरव तथा प्राचीन संस्कृति को नवजीवन प्रदान कर देश में उसकी स्थापना करना। अज्ञान मूर्खता तथा कूपमंडूकता से मुक्त कर उसमें आत्मविश्वास तथा पुरुष की भावना को जगाना ही तत्कालीन राष्ट्रीयता की परिसीमा थी। धर्म के माध्यम से राष्ट्रीय भावना उद्वेलित हुई जिससे जनता तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति सजग हो सकी।"[12] अतः जब यह कहा जाता है कि राष्ट्रवाद की भावना का उदय अंग्रेजों के कारण हुआ तो धर्म की भूमिका को नजरअंदाज कर दिया जाता है जबकि प्राचीनकाल से ही संस्कृत भाषा और उसमें लिखा गया साहित्य संपूर्ण भारतवर्ष में इस भावना का प्रसार करता आ रहा था।

निष्कर्ष :

भारतीय संस्कृति के आदर्श कितने ऊंचे थे इसका पता हमें तब चलता है जब हम संस्कृत साहित्य के पास जाते हैं। क्योंकि इस देश पर लगातार बाहरी आक्रमण होते रहे, विदेशी लोग आते रहे बसते रहे। इसलिए यहाँ की संस्कृति मिश्रित संस्कृति के रूप में आगे बढ़ती रही। अकेले मुसलमानों ने 800 वर्षों तक यहाँ शासन किया। साथ ही यहाँ के निवासी भी बन गए। अंग्रेजों ने 200 वर्षों से ज्यादा समय तक शासन किया। अतः इनकी भी भाषा और

संस्कृति यहाँ की संस्कृति में मिश्रित हो गई। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत की संस्कृति अब मिश्रित संस्कृति है और इसे अलगाया नहीं जा सकता। यही सच्चाई है और हमें इसे स्वीकार करना पड़ेगा।

संदर्भ

1. ए. आर. देसाई, भारत में राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, संस्करण-1977, पृ. सं.-127
2. राधाकुमुद मुकर्जी, हिंदू संस्कृति में राष्ट्रवाद, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली, संस्करण-1975, पृ.सं.-31
3. वही, पृ. सं.-32
4. रामधारी सिंह दिनकर, संकृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2014, पृ.सं.-13
5. राधाकुमुद मुकर्जी, हिंदू संस्कृति में राष्ट्रवाद, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली,संस्करण- 1975, पृ.सं.-12
6. रामविलास शर्मा, हिंदी जाति के सांस्कृतिक इतिहास की रुपरेखा, रामविलास शर्मा : संकलित निबंध, अजय तिवारी (संपा.), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. सं.-35
7. रामधारी सिंह दिनकर, संकृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2014,पृ. सं.-49
8. वही, पृ. सं.-30
9. वही, पृ. सं.-37

डॉ. नगेंद्र (सं), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2013, पृ.सं.- 403

10. ए. आर. देसाई, भारत में राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, संस्करण-1977, पृ. सं.-18
11. डॉ. सुषमा नारायण, भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिंदी साहित्य में अभिव्यक्ति, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली, संस्करण-1966, पृ. सं.-19